ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

समकालीन हिंदी कविता में वैश्विक पर्यावरणीय परिदृश्य

Dr. Savita Tak

Assistant Professor, Hindi, M.L.V. Government College, Bhilwara, Rajasthan, India

सार

पर्यावरण संरक्षण वर्तमान समय के विमर्शों का एक मुख्य विचारणीय बिंदु है। समाज विज्ञानों, तकनीक - विज्ञान, दर्शन से जुड़े लगभग सभी अकादमिक विमर्श तक इसकी व्याप्ति हो चुकी है। मानव जीवन से जुड़े सभी अनुशासनों मे यह चिंता मुख्य हो गई है कि हमें सबसे पहले पृथ्वी को बचाना है अन्यथा मानव ज्ञान व विज्ञान की समस्त उपलब्धियों का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा।

साहित्य और कला भी इस चिंता से मुक्त नहीं है। हिंदी साहित्य में आज विविध विमर्श चल रहे हैं। दलित, स्त्री आदिवासी विमर्शों जैसे महा आख्यानिक विमर्श के अतिरिक्त आज पर्यावरण की चिंता भी साहित्य के केंद्र मे आती जा रही है।

परिचय

प्रकृति का मनोरम रूप हमेशा से ही कवियों को प्रिय रहा है। कविता से प्रकृति का संबंध मां और पुत्री के संबंध की तरह है। हर युग मे प्रकृति के विराट व मनोराम रूप ने कवियों को उद्दीप्त किया है। संस्कृत के महाकाव्यों मे कालिदास से लेकर बाणभट्ट तक, हिंदी मे कबीर, सूर, तुलसी जायसी से लेकर आधुनिक काल मे प्रसाद, पंत, निराला से लेकर केदारनाथ अग्रवाल, नागर्जुन तक सभी कालजयी कवियों ने प्रकृति के बहुविध मनोरम, जीवनदायी व नवोन्मेषशाली रूप का अंकन किया है।

लेकिन उत्तर आधुनिक युग मे भूमंडलिकरण व अबाध लूट व मुनाफे पर आधारित उपभोक्तावाद ने जिस तेजी के साथ इस प्रकृति का विनाश किया है वह पूर्ववर्ती कवियों ने सोचा भी नहीं होगा। इसलिए समकालीन हिंदी कविता जो बाजारवादी - उपभोक्तावादी संस्कृति का मुखर विरोध करती है, इसी में वह पर्यावरण संकट पर चिंता जाहिर करते हुए पृथ्वी को बचाने का आहवान करती है।

इस संदर्भ में कवि स्वर्गीय मंगलेश डबराल की कविताएं अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। मंगलेश डबराल का बचपन पहाड़ों में बीता था। वे टिहरी गढ़वाल के काफलपानी गांव के रहने वाले थे। उन्होंने पहाड़ों की हिम आच्छादित सौंदर्य को देखा था इसलिए विकास के नाम पर पहाड़ों की दुर्दशा को अपनी व्यक्तिगत स्मृतियों की क्षति के रूप में देखते हैं। अपनी कविता 'यहां थी वह नदी' में वे लिखते हैं -

"हमे याद है
यहां थी वह नदी इसी रेत में
जहां हमारे चेहरे हिलते थे
यहां थी वह नाव इंतजार करती हुई
अब वहां कुछ नहीं है
सिर्फ रात को जब लोग नींद में होते हैं
कभी - कभी एक आवाज सुनाई देती है रेत सी"[1]

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

एक नदी के सूख कर रेत हो जाने की त्रासदी को ये पंक्तियां बहुत ही मार्मिक तरीके से व्यक्त करती हैं। मंगलेश जी पर्यावरण के संकट को प्रकृति व मनुष्यता के संकट के समतुल्य रखकर समझते हैं। पूंजीवादी संस्कृति जो वैश्वीकरण के नाम पर स्थानीयता को नष्ट कर रही है [1], लोक संस्कृति को ग्लोबल सांस्कृतिक के नाम पर समाप्त कर रही है। ऐसे में प्रकृति को बचाने के लिए कवि हमारी लोक संस्कृति व प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाने की बात करता है। अपनी कविता 'घटती हुई ऑक्सीजन' में वे लिखते हैं -

"अक्सर पढ़ने में आता है
दुनिया में ऑक्सीजन कम हो रही है
कभी ऐन सामने दिखाई दे जाता है कि वह कितनी तेजी से घट रही है
रास्तों पर चलता हूं खाना खाता हूं पढ़ता हूं सोकर उठता हूं
तो एक लंबी जमुहाई आती है
जैसे ही किसी बंद वातानुकूलित जगह में बैठता हूं
उबासी एक झोंका भीतर से बाहर आता है
एक ताकतवर आदमी के पास जाता हूं
तो तत्काल ऑक्सीजन की जरूरत महसूस होती है
बढ़ रहे हैं नाइटोजन सल्फर कार्बन के ऑक्सीजन
और हवा में झूलते अजनबी और चमकदार कण
बढ़ रही है घृणा दमन प्रतिशोध और कुछ चालू किस्म की खुशियां"[2]

ये पंक्तियां उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण उत्पन्न हो रहे पर्यावरण संकट की ओर इंगित करती हैं। इस शोध पत्र में मंगलेश डबराल के अतिरिक्त समकालीन कविता मे सक्रिय उन कवियों की कविताओं की पड़ताल की गई है जिन्होंने भूमंडलीकरण के बाद बढ़ते पर्यावरण संकट को अपनी रचनाओं के केंद्र मे रखा है। यह शोध पत्र पर्यावरण की चिंताओं को केंद्र मे रखकर रची गई कविताओं और कवियों को दृष्टिगत रखते हुए लिखा गया है।

मंगलेश डबराल पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को आधुनिक विकास की अवधारणा के अंतर्विरोधों के रूप मे समझने की कोशिश करते हैं। नगरीकरण व आधुनिक जीवन शैली की उपभोक्तावादी प्रवृत्ति ने प्रकृति का सर्वाधिक विनाश किया है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के साथ बड़ी बड़ी कंपनियों ने जंगलों पहाड़ों और नदियों जैसे प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करना प्रारंभ किया। जंगलों व पहाड़ों पर कब्जे के लिए वहाँ हजारों सालों से निवास कर रहे आदिवासियों को विस्थापित करने का अभियान चलाया गया। इस प्रयास का आदिवासियों ने प्रतिवाद भी किया। आदिवासियों की जीवन शैली वनों और प्रकृति के साथ सह अस्तित्व पर आधारित है। वे वनों पर निर्भर रहते हैं साथ ही उनका संरक्षण भी करते हैं। पर्यावरण की रक्षा उनके लिए सहज जीवन शैली का अंग है। मंगलेश डबराल जी अपनी कविता 'आदिवासी' में इस प्रक्रिया को इस प्रकार दर्ज करते हैं -

"सिर्फ नदियां नहीं उनके वाद्ययंत्र हैं
मुरिया बैगा संथाल मुंडा उरांव डोंगरिया कोंध पहाड़िया
महज नाम नहीं वे राग हैं जिन्हें वह प्राचीन समय से गाता आया है
और यह गहरा अरण्य उसका अध्यात्म नहीं उसका घर है
कुछ समय पहले तक वह अपनी तस्वीरों में
एक चैड़ी और उन्मुक्त हंसी हंसता था
उसकी देह नृत्य की भंगिमाओं के सहारे टिकी रहती थी
एक युवक एक युवती एक दूसरे की ओर इस तरह देखते थे
जैसे वे जीवन भर इसी तरह एक दूसरे की ओर देखते रहेंगे

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

युवती बालों में एक फूल खोंसे हुए
युवक के सर पर बंधी हुई एक बांसुरी जो अपने आप बजती हुई लगती थी
अब क्षितिज पर बार-बार उसकी काली देह उभरती है
वह कभी उदास और कभी डरा हुआ दिखता है
उसके आसपास पेड़ बिना पत्तों के हैं और मिट्टी बिना घास की
यह साफ है कि उससे कुछ छीन लिया गया है
उसे अपने अरण्य से दूर ले जाया जा रहा है अपने लोहे कोयले और अभ्रक से दूर
घास की ढलानों से तपती हुई चट्टानों की ओर
सात सौ साल पुराने हरसूद से एक नये और बियाबान हरसूद की ओर
पानी से भरी हुई टिहरी से नयी टिहरी की ओर जहां पानी खत्म हो चुका है
वह कैमरे की तरफ गुस्से से देखता है
और अपने अमर्ष का एक आदिम गीत गाता है
उसने किसी तरह एक बांसुरी और एक तुरही बचा ली है
एक फूल एक मांदर एक धनुष बचा लिया है
अखबारी रिपोर्टें बताती हैं कि जो लोग उस पर शासन करते हैं
देश के 626 में से 230 जिलों में
उनका उससे मनुष्यों जैसा कोई सरोकार नहीं रह गया है
उन्हें सिर्फ उसके पैरों तले की जमीन में दबी हुई
सोने की एक नयी चिड़िया दिखाई देती है
एक दिन वह अपने वाद्ययंत्रों को पुकारता है अपनी नदियों जगहों और नामों को
अपने लोहे कोयले और अभ्रक को बुला लाता है
अपने मांदर तुरही और बांसुरी को जोरों से बजाने लगता है
तब जो लोग उस पर शासन करते हैं
वे तुरंत अपनी बंदूक निकाल कर ले आते हैं। "[3]

पहाड़ों की स्मृतियां मंगलेश जी की कविता में विभिन्न रूप मे आती हैं। आधुनिक विकास के मॉडल ने हिमालयी क्षेत्र के पहाड़ों व उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्य के पर्यावरण को बहुत अधिक प्रभावित किया है। जल विद्युत परियोजनाओं के लिए नदियों पर बांधों का निर्माण और पहाड़ के ढलान पर वनों के निर्बाध कटाव ने भूस्खलन को बढ़ावा दिया है साथ ही तापमान के बढ़ने के कारण ग्लेशियरों के पिघलने की परिघटना सामने आती है।[2] इसी कारण जोशीमठ जैसी त्रासदी घटित होती है। पहाड़ों के जीवन सौंदर्य को याद करते हुए वे लिखते हैं -

" इन ढलानों पर वसंत आएगा
हमारी स्मृति में
ठंड से मरी हुई इच्छाओं को
फिर से जीवित करता
धीमे-धीमे धुँधुवाता खाली कोटरों में
घाटी की घास फैलती रहेगी रात को
ढलानों से मुसाफिर की तरह
गुजरता रहेगा अँधकार
चारों ओर पत्थरों में दबा हुआ मुख
फिर से उभरेगा झाँकेगा कभी
किसी दरार से अचानक
पिघल जाएगा जैसे बीते साल की बर्फ

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

शिखरों से टूटते आएँगे फूल
अंतहीन आलिंगनों के बीच एक आवाज
छटपटाती रहेगी
चिड़िया की तरह लहूलुहान "[4]

विचार-विमर्श

पर्यावरण में उपस्थित प्राणवायु गैस (ऑक्सीजन) मानव के लिए प्राणदायक है। हम सब श्वास द्वारा ऑक्सीजन लेते है और कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस बाहर निकालते हैं। इसी गैस को पेड़-पौधे अपना भोजन बनाने के लिए उपयोग में लाते हैं और हमें ऑक्सीजन लौटा कर हमारी रक्षा करते हैं। प्रकृति की यह बहुत ही सुन्दर व्यवस्था है कि प्रकृति जो कुछ भी एक तरफ से लेती है वह दूसरी ओर से लौटा देती है जिससे वातावरण में आवश्यक संसाधनों का संतुलन बना रहता है। पर्यावरण में वायु के साथ-साथ जल, पृथ्वी, जीव-जंतु, वनस्पति तथा अन्य प्राकृतिक संसाधन भी शामिल होते हैं। ये सभी मिलकर हमारे लिए संतुलित पर्यावरण की रचना करते हैं। 'पर्यावरण' शब्द का अर्थ अत्यंत ही व्यापक है। इसके अंतर्गत पूरा ब्रह्मांड समाया हुआ है। साधारण अर्थ में कहें तो 'परि' का अर्थ होता है 'हमारे चारो ओर' और 'आवरण' का अर्थ हुआ 'ढकना' या 'घेरा' अथार्त प्रकृति में हमारे चारो तरफ जो कुछ भी तत्व फैला हुआ है जैसे – वायु जल, मृदा, पेड़-पौधे, तथा जीव-प्राणी आदि वह सभी तत्व पर्यावरण के अंग हैं। इन्हीं से पर्यावरण की रचना होती है। प्रकृति का मानव के साथ अटूट और अन्योन्याश्रय संबंध है। मानव शरीर का निर्माण भी प्रकृति के ही इन पांच तत्वों से मिलकर हुआ है। प्रकृति से आवश्यक तत्वों का संकलन करके, प्रकृति शरीर का निर्माण करती है और जीवन के अंत होने के बाद उन तत्वों को पुनः प्रकृति को लौटा देती है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के 'किष्किन्धाकाण्ड' में लिखा है- "क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच तत्व से बने सरीरा" अथार्त पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु से मिलकर हमारा शरीर निर्मित हुआ है।

भारतीय साहित्य और दर्शन सम्पूर्ण रूप से पर्यावरण पर केन्द्रित रहा है। मानव का प्रथम कर्तव्य होता है कि वह प्रकृति की रक्षा करे। प्रत्येक युग में साहित्यकारों ने अपने साहित्य में प्रकृति का स्तुति किया है। मानव जीवन का आधार कहे जाने वाले पांच महाभूतों का गुणगान हमेशा से होता आया है। महाकवि तुलसीदास जी के रामचरितमानस में प्रकृति के साथ-साथ गंगा और सरयू नदी के माध्यम से पर्यावरण का चिंतन मिलता है। कविवर रहीम ने भी पानी के माध्यम से जीवन के तत्व का ज्ञान कराया है-

"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सुन!
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस चुन!!"

यह युक्ति वर्तमान संदर्भ में अधिक चरितार्थ और उपयुक्त है क्योंकि अपनी स्वार्थ से लिप्त मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का बहुत ही दोहन किया है। जंगल कटने के कारण वन सम्पदा का दोहन तो हुआ ही है इससे जल और शुद्ध वायु पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। जंगल की अंधाधुध कटाई से वर्षा कम हो गई है और नदियाँ सूखने लगी है। शहरों में बढ़ती आबादी ने जमीन के नीचे से पानी को सोख लिया है। इसप्रकार एक तरफ वर्षा की कमी और दूसरी तरफ कम वर्षा से भी मिलने वाले जल का उचित संरक्षण नहीं होने के कारण भूमिगत जल का स्तर भी दिन पर दिन गिरता जा रहा है। जल श्रोतों के इस दोहन के फलस्वरूप आज हमें पानी की समस्याओं से जूझना पड़ रहा है और यही हाल रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हमें जल त्रासदी से गुजरना पड़ेगा।[3]

परिणाम

हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ से ही प्रकृति के अनावश्यक दोहन का विरोध किया गया है। हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के कवियों जैसे- कबीर, रहीम, गुरुनानक, रविदास, जायसी आदि ने अपने रचनाओं में प्रकृति का कई स्थानों पर रहस्मय वर्णन किया है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लक्ष्मण और सीता को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है, जैसे-

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

"तुलसी तरुवर विविध सुहाए। कहुं-कहुं सिय, कहुं लखन लगाए"।।

रीतिकाल के कवियों ने भी प्रकृति की सुन्दरता का अलंकारिक वर्णन करके अपनी रचनाओं में चार चाँद लगा दिया है। बिहारी, देव, पद्माकर, सेनापति आदि कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य को अपनत्व दिया है। कवि बिहारी ने मलयानिल की शीतलता और सुगंधी का बिम्बात्मक वर्णन करते हुए कहा है-

"चुवत स्वेद मकरंद कण, तरु-तरु तर बिरमाय।
आवंट दच्छिन देष ते थक्यो बटोही बाय"।।

इसी काल में मैथिल-कोकिल विधापति द्वरा रचित पदावली में ऋतुराज बसंत का स्वागत राजा के आगमन जैसा किया गया है। इस पद में प्रकृति के प्रति ममत्व का दर्शन होता है-

"आएल रितुपति राज बसंत, धाओल अलिकुल माधवि-पंथ।
दिनकर किरण भेल पौगंड, केसर कुसुम धएल हेमदंड।
नृप-आसन नव पीठल पात, कांचन कुसुम छत्र माथ।
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताब, समुखही कोकिल पंचम गाय"।।

आधुनिककाल के साहित्यकारों में जैसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद दिवेदी आदि कवियों ने भी प्रकृति के अनावश्यक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर मनुष्य को प्रेरित किया है। आदिकाल साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक कवियों ने अपनी कविताओं में पर्यावरण / प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। आज की कविताओं में पर्यावरण के रमणीय दृश्यों के साथ-साथ प्रकृति में होने वाली प्राकृतिक विपदाओं का भी हृदय विदारक चित्र अंकित किया गया है। प्रकृति की छटा का सुन्दर रूप मैथिलीशरण गुप्त जी ने साकेत, पंचवटी, सिद्धराज, यशोधरा आदि ग्रंथों में किया है। रात्रिकालीन वेला की प्राकृतिक छटा का बड़ा ही मनोहारी वर्णन इन पंक्तियों में मिलता है-

"चारू चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है अवनी और अम्बरतल में"।

कवि श्रीधर पाठक ने 'कश्मीर की सुषमा' कविता में प्रकृति के स्वरूप का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है तो कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपने 'प्रिय-प्रवास' (महाकाव्य) में राधारानी की हृदय व्यथा का प्रकृति के उपादानों के माध्यम से सुन्दर रूप व्यंजित किया है। कृष्ण भी अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति में प्राकृतिक प्रतिकों का सहारा लेते हुए दीखते हैं।

"उत्कंठा के विवष नभ को, भूमि को पादपों को।
ताराओं को मनुज मुख को प्रायष: देखता हूँ।
प्यारी! ऐसी न ध्वनि मुझको है कहीं भी सुनाती।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

जो चिंता से चलित-चित की शांति का हेतु होवें"।

छायावादी काव्य में भी प्रकृति के सूक्ष्म व उत्कृष्ट रूपों का वर्णन मिलता है। महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी अपनी कविताओं में प्रकृति के रूपों का अनोखा वर्णन किया है। सुमित्रानन्दन पंत प्रकृति की सुदरता में इतने मुग्ध हो जाते हैं कि उन्हें अपनी प्रेयसी का प्यार भी तुच्छ लगने लगता है और वे कहते हैं-

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन"।

कवि निराला जी ने भी संध्या की बेला को सुंदरी के रूप में वर्णन करते हुए कहा है-

"दिवसावसान का समय मेघमय आसमान से उतर रही है।
वह संध्या सुन्दरी परी-सी, धीरे, धीरे, धीरे"।

कवि दिनकर जी ने 'कामायनी' काव्य में आरम्भ से ही प्रकृति के भयानक रूप का वर्णन किया है। इस काव्य में जल प्रलय के बाद सबकुछ नष्ट हो जाता है। कवि का संकेत है कि प्रकृति से कभी भी खिलवाड़ नहीं करना चाहिए।[4]

"हिमगिरि के उतुंग शिखर पर, बैठ शीला की ऊपर छाँह।
एक पुरुष, भीगे नयनों से, देख रहा है प्रलय-प्रवाह"।

मनुष्य के भोगवादी प्रवृति ने आज प्रकृति के संतुलन को खतरे में डाल दिया है। यही कारण है कि हमें अकाल, बाढ़, सुखा आदि का निरन्तर सामना करना पड़ रहा है। हर वर्ष कहीं न कहीं प्राकृतिक विनाश की घटनायें घटती ही रहती है। भोगवादी मानव के साथ वैज्ञानिक प्रयोगों से भी प्रकृति को नष्ट किया जा रहा है। अज्ञेय ने अपनी कविता में कहा है कि- "मानव का रचा हुआ सूरज मानव को भाप बनकर सोख रहा है"। अज्ञेय के काव्य में मानव और पर्यावरण के अंतः संबंधों की चालाकी दिखाई देती है। उन्होंने अपनी कविता 'असाध्य वीणा' में मनुष्य को अहं का त्याग करने तथा आत्मानुभूति प्राप्त करने की प्रेरणा दिया है। वर्तमान में अब तकनीक बदल रहा है, आज के समय में अधिकतम कार्य उर्जा उत्पादन, विधुत उत्पादन नाभीकीय विखंडन एवं नाभीकीय संलयन आदि विधियों से किया जा रहा है। इनसे अधिक मात्रा में रेडियोएक्टिव विकिरण उत्सर्जित होता है। वनों के नष्ट होने के कारण ताप में लगातार वृद्धि हो रही है इसके दुष्परिणामों ने भी साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित किया है-

"सिर पर सम्मुख
जलता सूरज
भभक रहा है
लपटों में घिर देह बचाती
पृथ्वी का हरियाला आंचल
झुलस गया है
न जाने क्यों नाराज हुए इन्द्रदेव"

आज जंगलों और वृक्षों के नष्ट हो जाने से कई जीव-जंतु विलुप्त हो रहे है और जो शेष बचे हुए है उनका भी भविष्य ठीक नहीं दिख रहा है अतः कवि दीपक कुमार कहते है-

"पास के एक गांव में भटकी एक कोयल
कूक रही है भरी दुपहरिया में

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

कंक्रीट की अमरैया में,
कहाँ बची है छाँव
जो इत्मिनान से तू ले सके आलाप
कोई तो अमराई बची होगी कहीं पर

आज समूचा विश्व ग्लोबल वार्मिंग जैसे शब्द से भलीभांति परिचित है औए पीड़ित भी है। कार्बनिक गैसों के उत्सर्जन से हमारे जीवन को सुरक्षा पहुँचाने वाली ओजोन परत में छिद्र हो गया है, धरती का ताप दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। कवि अरुण कमल भी इस बात से अछूते नहीं हैं वे कहते हैं –

"आ रहा है ग्रीष्म
देह का एक-एक रोम अब
खुल रहा है साफ और अलग
नभ इतना खुला और फैलता हुआ
सूरज के डूबने के बाद भी"

प्रदूषित हो रही नदियों, उनकी सफाई तथा उनके रख रखाव पर सरकारी नीतियों के कार्यक्रमों की जो प्रक्रिया है वह भी कुछ खाश नहीं है। कवि उनपर भी प्रश्न उठाते हुए कहते हैं

नदियाँ कल भी बहती थी
बहती है आज भी
अवरोधों से
हमेशा जूझती नदियाँ वे कल भी पाषाण थे
आज भी पाषाण है
व्यवस्था के नाम पर
उल्टी बहती नदियाँ
पर्वतों के उस पार खंजरों के धार पर है नदियाँ
वे पोखरों को बताते है नदियां

प्रकृति का वर्णन अनेक वर्षों से, सभी काल में, कविता के माध्यम से किया जाता रहा है। आज के परिवर्तनशील परिस्थितियों को केन्द्र में रखकर अनेक कवियों ने अपने-अपने तरीके से, समकालीन हिन्दी कविता में प्रकृति का बहुत ही सजीव चित्रण किया है। बढ़ते हुए प्रदुषण के कारण पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है जिसके प्रति सामाजिक कार्यकर्ता, वैज्ञानिक आदि की तरह कवि और साहित्यकार भी काफी चिंतित हैं। ये लोग अपने कविताओं और साहित्य के माध्यम से पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता व्यक्त किया है। समकालीन कविता वास्तव में पर्यावरण त्रासदी का युग है जिसे अनेक कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है।[1]

आओ हम सब पर्यावरण बचाएं, सुन्दर सा एक दृश्य बनायें।
बदलें हम तस्वीर जहाँ की यह संदेश चहु ओर फैलाएं।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कविता का प्रस्थान बिंदु अस्सी के आस-पास माना जाता है। इस समय हिंदी कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से विभिन्न स्तरों पर स्वयं को अलगा रही थी। अलहदा होने का लक्षण कविता में साफ-साफ दिख रहा था। कवियों ने इसे कविता की मुख्यधारा में वापसी कहा। यह अलहदापन संवेदना, भाव, विचार, दर्शन एवं भाषा के स्तर पर झलक रहा था। क्योंकि पूर्व की कविता में विद्रोह, हर चीज का निषेध एवं मोहभंग का गुस्सा था। कवियों के समक्ष कोई बड़ा लक्ष्य नहीं दिखायी पड़ रहा था। दिशाहीनता के शिकार ये कवि

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

कविता को प्रभावी बनाने के लिये गोला, बारूद, बंदूक, क्रांति, गुरिल्ला युद्ध जैसे शब्दों को ठूंस रहे थे। कविता छद्म भावों एवं कृत्रिम शब्दों के चारों ओर चक्कर काट रही थी। लेकिन अस्सी के दशक तक आते आते स्थिति में परिवर्तन आया। कविता वस्तुस्थिति से साक्षात्कार करती दिखाई पड़ती है।

समकालीन हिंदी कविता सकारात्मक मानव मूल्यों के साथ ही मुनष्य को समग्रता में आत्मसात कर चलती है। मनुष्य को तोड़नेवाली हिंसा और उसके विकास की दिशा को रोकनेवाली साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ सृजनात्मक मूल्यों को प्रश्रय देती है। इसमें सकारात्मक हस्तक्षेप का भी स्वर है। इस कविता की मूल शक्ति है-मानवीय संवेदना, करुणा, दया, अहिंसा, मानवाधिकार के तत्व, लोकतांत्रिक जीवन मूल्य। कवि सामान्य लोगों की बौद्धिक कमजोरी को दूर कर समाज में समता, बंधुत्व एवं न्याय की स्थापना के लिये संघर्ष करने को प्रेरित करता है। [2]उसके ज्ञान क्षितिज का विस्तार करता है। रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, अज्ञानता को मिटा कर, वैज्ञानिक चेतना जगा कर उसे स्वविवेक से सत्य और असत्य के निर्णय करने के योग्य बनाता है। उसे संवेदनशील बना कर इंसानियत की रक्षा के लिए सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर तैयार करता है। उसे अपनी सुविधाओं एवं खुशियों को हासिल करने के लिये गुरिल्ला युद्ध करने, उसके हाथों में हथियार नहीं थमाना चाहता है। आज का कवि जानता है कि हिंसा से मानव समुदाय का अहित होगा। आनेवाली पीढ़ियों के लिये यह धरती शांति, प्रेम एवं भाईचारे को खो देगी। विषमतामूलक समाज को मिटा कर मानवीय समानता के आधार पर देश-दुनिया का निर्माण समकालीन कविता का लक्ष्य है। हिंसा, खून खराबा को प्रश्रय न देकर कवि मनुष्य को मनुष्य से जोड़नेवाले तत्व प्रेम, करुणा, दया, अहिंसा, सत्य, आत्मीयता, सहानुभूति, सहयोग जैसे महान मानव मूल्यों को संपोषित करता है। जीवन को सकारात्मक दिशा की ओर बढ़ने में मदद करनेवाली प्राकृतिक उपादानों को भी आज की कविता अहम मानती है। इसके लिये लाल आतंक और घातक हथियारों की जगह कविता में- धरती, आकाश, बादल, बारिश, पेड़, पौधों, फूल, चिड़ियां, नदी, पहाड़, जंगल, सुबह, शाम, दोपहर, वसंत, सर्दी जैसे प्राकृतिक रूपों को विशेष स्थान दिया गया है। वहीं साधारण आदमी की इच्छा, प्रेम, विचार, भाव, सहयोग, संघर्ष, खून-पसीना और बदलते सामाजिक मूल्यों का चित्रण भी है। घर, परिवार, पत्नी, मां, बाप, बच्चे, मित्र, टोला, पड़ोस, खेत-खलिहान, श्रम एवं फसलें मिल कर आज की कविता को पूर्व की अपेक्षा जनसरोकारों से जोड़ता है। वह जीवन के यथार्थ का मानो भोक्ता हो गयी है। वायवीय भावों, विचारों एवं कल्पनाओं के लिये यहां बिलकुल जगह नहीं है। आज की कविता अनंत संभावनाओं से युक्त तेजी के साथ जीवन के अनछुए पहलुओं को रच रही है। इसमें आतंक और चीख-पुकार या शोर-शराबा नहीं है। यही कारण है कि समकालीन कवियों की कविताएं नारेबाजी एवं बड़बोलेपन का शिकार नहीं हैं। व्यक्ति, समाज, देश एवं दुनिया के अनुभव, चिंतन एवं लोगों के संघर्ष को स्वाभाविक तरीके से सहज एवं सरल भाषा में व्यक्त किया जा रहा है।[3]

एक मायने में समकालीन हिंदी कविता पूर्व की कविता का सहज एवं स्वाभाविक विकास है। इसी समय कई युवा कवि अपनी उर्वर प्रतिभा के साथ उभर कर आए। कहना न होगा, इन कवियों के पास स्पष्ट दृष्टिकोण एवं नयी दिशा थी। यही करण है कि इनकी कविताओं में उलझे हुए न तो बिंब मिलते हैं और न भावबोध के स्तर पर कोई क्लिष्टता। कवि जो बात कहना चाहता है उसके प्रति उसकी मंशा बिलकुल साफ है। अपनी विचारधारा को प्रगतिवादियों एवं प्रयोगवादियों की तरह पाठकों पर थोपता नहीं हैं। इन कवियों में सबसे बड़ी विशेषता जो नजर आती है वह है विनम्रता। उनकी आत्मीयता समाज के दबे, कुचले, वंचित, शोषित, मनुष्य के प्रति है। वहीं स्त्री, बालक, युवा, वृद्ध की तकलीफों, उसके सपनों एवं उनकी स्थितियों में परिवर्तन की आशा भी है। दलित, मजदूर, किसान, स्त्री, छात्र, शिक्षक, पत्रकार, नेता, उद्योगपति, आदिवासी समाज, हर किसी के इतिहास और वर्तमान हालात का कवि आकलन करना चाहता है। अपने परिवेश, संस्कृति, देश एवं भाषा के प्रति में उत्कट प्रेम दिखायी पड़ता है। यहां निषेधवादियों की तरह पूरी तरह सब चीजों का नकार नहीं है। क्योंकि जीवन में सबकुछ बुरा हीं नहीं होता। उसमें नवसृजन के बीज हमेशा आत्मा की तरह सुरक्षित रहते हैं। कवि अपने परिवेश एवं परंपरा में उस सृजनात्मक बीज की तलाश करता है। और अवसर आते ही पूरी संवेदना के साथ कविता में चुपचाप अपना स्थान ग्रहण कर लेता है। बदलाव की दिशा तय होने लगती है। हां, एक बात मैं समकालीन कविता के बारे में जरूर कहना चाहता हूं वह यह कि आज की कविता आंदोलनविहीन दौर की कविता है। सारा दायित्व कवियों एवं आलोचकों पर आ गया है। क्योंकि इसके पूर्व हिंदी कविता के समक्ष इतनी बड़ी चुनौती नहीं आयी थी। जबकि आज उसके सामने अपने अस्तित्व की रक्षा की चिंता प्रश्न है। क्योंकि दुनिया में नये-नये विचार एवं चिंतन का जो विस्फोट हो रहा है। इससे कवि दिग्भ्रमित-सा इधर-उधर की सोच रहा है। वहीं आज इस तेजी से बदलते वैश्विक जीवन के साथ कविता के परिदृश्य को समझने की जरूरत है। मानवता को बचाने का संघर्ष कवि को ही करना है।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

समकालीन हिंदी कविता के इसी परिदृश्य में कई नयी प्रतिभाएं नयी सोच, विचार, भाव एवं भाषा एवं कविता के साथ उभरी थीं। इनमें तो कई कवियों को आलोचना में जगह मिली। उनके काव्य का मूल्यांकन हुआ। वे प्रतिष्ठित हुए। और कई पूर्व से लिख रहे थे और प्रतिष्ठित थे। इसलिए इस काल की कविता में एक साथ कई पीढ़ियों के कवि लिखते दिखाई पड़ते हैं। फिर भी अस्सी के दशक में एक पीढ़ी राजेश जोशी, अरुण कमल, मंगलेश डबराल, ज्ञानेंद्रपति, वीरेन डंगवाल, विनोद कुमार शुक्ल आदि की थी। उनकी कविताओं की ओर आलोचकों की दृष्टि गयी। उनकी पहचान बनी है। लेकिन कई ऐसे और भी कवि लिख रहे थे, जिनकी कविताएं अपने समकालीनों में किसी भी स्तर पर कमजोर नहीं हैं। क्या भाव, क्या भाषा एवं क्या संवेदना के स्तर पर। उनकी सृजनात्मकता आज भी पूर्ववत जारी है। फिर क्यों नहीं आलोचकों का धयान इन कवियों की ओर गया। दरअसल, हिंदी आलोचना की परंपरा की तरह विस्मृति की भी एक परंपरा साहित्य में चलती आ रही है। आलोचक ऐसा करने के लिये ज्ञानमार्ग अपनाता है। यह ज्ञानमार्ग है अपनी पंसद एवं प्रिय-कवियों का चयन करना और उनकी कृतियों को आलोचना के योग्य समझना। अन्य कवियों की ओर से दृष्टि फेर लेना। यही हुआ है इस कालखंड में लिखनेवाले दृष्टिसंपन्न, संवेदनशील एवं परिपक्व कवि भारत यायावर, शंभु बादल, अनिल जनविजय, स्वप्निल श्रीवास्तव, सुधीर सक्सेना, नरेंद्र पुंडरीक एवं राजा खुगसाल के अलावा अन्य कवियों के साथ। यहां हम अपने लेख को इन्ही कवियों की कविताओं तक सीमित रखेंगे।

भारत यायावर (1954) बहुआयामी व्यक्तित्व के कवि हैं। समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक हैं। 1980 में इनकी एक लंबी कविता 'झेलते हुए' प्रकाशित हुई। इसमें कवि अपने अस्तित्व की तलाश करता दिखायी देता है। बाहरी और भीतरी अंर्तद्वंद्व के साथ कवि व्यक्ति, जीवन, समाज एवं देश की व्यवस्था से जूझता नजर आता है। वह अपने चारों ओर के फैले विराट परिवेश में जीवन-संसार और इसमें रहनेवाले लोगों के बीच अजनबी-सा पाता है। उसे चिर-परिचित लोग ही उनको प्रेत की तरह देखते हैं। लेकिन कवि के हृदय में उनके प्रति अपार प्रेम है। वह अपनी संघर्ष

धर्मी चेतना का वाहक मामूली आदमी को मानता है। वह प्रारंभिक दौर में अपने अस्तित्व की चिंता के साथ ही अपनी कविता के पक्ष को स्पष्ट भी करता है। वह इस लंबी कविता में दार्शनिक अंदाज में चीजों पर विचार करता है। भारत यायावर का मुकम्मल प्रथम काव्य संग्रह 1983 में 'मैं हूं यहां हूं' प्रकाशित हुआ। देश में इसकी खूब चर्चा हुई। लेकिन आलोचकों ने इसका उदारतापूर्वक मूल्यांकन नहीं किया। बड़े सूक्ष्म तरीके से कवि को खारिज करने की कोशिश की गयी। यही पूर्वाग्रह एवं दुराग्रह दृष्टि इनकी पीढ़ी के अन्य रचनाकारों के साथ अपनायी गयी। इसी तरह 1990 में 'बेचैनी', 2004 में 'हाल बेहाल' एवं 2015 में युवा कवि गणेश चंद्र राही द्वारा संपादित 'तुम धरती का नमक हो' कविता संग्रह प्रकाशित हुआ है। इन कविताओं में ग्रामीण संवेदना, मामूली आदमी के जीवन, उनके सुख-दुख, संघर्ष, अर्द्धनिद्रा से जागता हुआ समाज है, इतिहास के गोरखधंधों में फंसे लोग हैं, पिता की बदहाली, माता का स्नेह, बहन का दुलार, इंसानियत को बचाने की चिंता, व्यक्ति के संपन्न होने पर उनके भीतर से खत्म होती कोमलता और उसकी जगह विध्वंसक सोच का जन्म, इंसान को बेहतर बनाने वाले सपने और विषमता से भरे समाज को बदलने की बेचैनी है। एक रोटी का प्रश्न किस प्रकार पूरी व्यवस्था के लिये चुनौती बन जाता है। और जब इस प्रश्न के समाधान के लिये लोग आवाज उठाते हैं तो यह पूरी व्यवस्था राक्षस की तरह उसके खिलाफ किस तरह खड़ी हो जाती है, उसकी सारी सुविधाओं को लीलने के लिए तैयार हो जाती है, इस कठोर सच्चाई की अभिव्यक्ति हुई है। यहां साम्राज्यवाद का अदृश्य पंजा किस प्रकार भारत की जनता को अपनी गिरफ्त में लेने के लिए बढ़ रहा है और अमेरिका के नेतृत्व में दुनिया के विकासशील देश किस तरह उसकी विकास की नीतियों में भ्रमित होते हैं, भारत यायावर की कविताओं से जाना जा सकता है।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी कविता की परंपरा मे प्रकृति जहाँ अपने सुंदरतम रूप में उपस्थित रही है। वहीं समकालीन कविता में पर्यावरण को बचाने की चिंता प्रमुख है। आज की कविता प्रकृति के मनोरम रूप की स्मृतियों को संजोते हुए प्रकृति के विनाश के कारणों की पड़ताल करती है। मंगलेश डबराल समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण की चिंता को प्रमुख रूप से अभिव्यक्त करते हैं।[4]

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 7, July 2019

संदर्भ

1. 'यहां थी वह नदी' मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 51
2. घटती हुई ऑक्सीजन, मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 32,
3. आदिवासी, मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 334
4 वसंत, मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 48